पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा–सी.डी.–६ A

मुमुक्षु :– हे पूज्य माताजी! पूज्य गुरुदेव की बात धारणा ज्ञान में आयी है, फिर भी अंतर पुरुषार्थ शुरु नहीं होता उसका क्या कारण है? अथवा मुमुक्षुजीव को धारणा ज्ञान में तत्त्व समझ में आने के बाद पुरुषार्थ हेतु किसप्रकार अंतर में कार्य करना चाहिये, यह आप कृपा करके समझाइये।

समाधान :– पुरुषार्थ नहीं चलता इसका कारण स्वयं खुद का है। गुरुदेवने तो बहुत समझाया है। धारणाज्ञान किया लेकिन अंतरमेंसे खुद को लकना चाहिये न। अंतर में विचार कर लिया, धारणा कर ली लेकिन निर्णय अंतरमेंसे यथार्थ आना चाहिये। खुद करता नहीं, स्वयं के पुरुषार्थ की मन्दता है। अपने पुरुषार्थ की मन्दता (है)। आत्मा की इतनी लगी नहीं है कि मुझे आत्मा ही चाहिये, दूसरा कुछ नहीं चाहिये। इतनी लगनी अंतरसे लगनी चाहिये। आत्मा ही सर्वस्व है, ये विभाव में कहीं सुख या शान्ति नहीं है, सुख-शान्ति हो तो एक आत्मा में है। ऐसी अंतर की जिज्ञासा, लगनी आदि सब लगना चाहिये तो होता है। यह किये बिना होता नहीं। उसका विचार करना चाहिये, नक्की करना चाहिये कि यही आत्मा है। यह ज्ञानस्वभाव है वही आत्मा है। इसके सिवा दूसरा कुछ भी अपना स्वरूप नहीं है। एक ज्ञायक। ज्ञायक के अन्दर अनन्त गुण भरे हैं। अनन्त शक्तियाँ भरी है। सब आत्मा में है। बाहर कहीं भी नहीं है। जीव अनन्त कालसे सब बाहर ढूँढ रहा है कि बाहरसे जैसे ज्ञान आयेगा, बाहरसे सुख आयेगा। सब बाहर ढूँढता है। बाहर में कुछ नहीं है। गुरु मार्ग बताते है। वे निमित्त बनते हैं, लेकिन पुरुषार्थ तो स्वयं को करना है। उपादान स्वयं का तैयार हो तो निमित्त तो तैयार ही है। उपादान की क्षति है इसलिये नहीं होता। निमित्त तो गुरुदेव का प्रबल था, उनकी वाणी जोरदार (थी)। अन्दरसे भेदज्ञान हो ऐसी वाणी थी। चारों ओरसे स्पष्ट करते थे। लेकिन स्वयं के उपादान की क्षति है इसलिये वह नहीं होता। उपादान की तैयारी स्वयं करनी है। करे तो होवे ऐसा है। अनन्त जीवोंने किया है और स्वयं का स्वभाव है, नहीं हो सके ऐसा नहीं है। दुर्लभ कहा जाता है लेकिन अपना स्वभाव है इसलिये सुलभ है, कर सके ऐसा है।

मुमुक्षु :– श्रीमद्‌जी में आता है कि ज्ञानी की आज्ञा का आराधन वह कर सकता है कि जो एक निष्ठासे तन, मन और धन की आसक्ति का त्यागकर उनकी भक्ति में जुड़े। तन, मन और धन इसमें क्या कहना चाहते हैं?

समाधान :– गुरु की आज्ञा का आराधन (अर्थात्) गुरु जो कहते हैं, गुरु जो मार्ग दर्शाते है उस मार्गपर स्वयं गुरु की आज्ञा का आराधन करे। गुरु कहते हैं कि तेरा आत्मा

भिन्न है। तू अंतर में देख, उसमें ही सब है, बाहर कुछ नहीं है। बारंबार गुरुदेव कहते थे कि तू आत्मा भिन्न, यह तेरा स्वरूप नहीं है। शास्त्र में आता है, गलतीसे कपड़ा भूल जाता है तो बारंबार उसे कहने में आता है तब वह समझता है कि यह मेरा वस्त्र नहीं है, गलतीसे आ गया है। वैसे गुरु बारंबार कहते हैं कि तू भिन्न ज्ञायक आत्मा है, बारंबार कहते हैं। लेकिन खुद अन्दरसे समझे तो होता है। लेकिन गुरु की आज्ञा का आराधन तनसे, शरीर पर भी लक्ष्य नहीं है। तनसे, मनसे। मनसे भी गुरु जो कहते हैं वह बराबर है। और वचनसे गुरु कहें वह बराबर है। तन, मन, धन। धन का मुझे क्या काम है? गुरु की आज्ञा में सब अर्पण है। ऐसे परिग्रह की ममता भी मुझे कुछ नहीं चाहिये। जो गुरु कहते हैं वह बराबर है। गुरु की आज्ञा का आराधन। सबसे छूट जाये। सबसे परपदार्थ के लोभसे छूट जाये, हरजगहसे छूट जा, ऐसा गुरु कहते हैं। इसलिये अंतरसे सबसे छूट जा। गुरु को अर्पण (करे तो) गुरु को कहाँ धन चाहिये? गुरु को तो धन नहीं चाहिये। लेकिन तन, मन और धनमेंसे अपना लोभ छुड़ा दे। ये परद्रव्य मेरा स्वरूप नहीं है, यह धन मेरा स्वरूप नहीं है, कोई मेरा स्वरूप नहीं है। मुझे कुछ नहीं चाहिये। गुरु कहते हैं कि तेरा कुछ भी नहीं है। तू सबकुछ गुरु को अर्पण कर। ऐसी उसे भावना (रहती है)। गुरु को तो कुछ नहीं चाहिये।

गुरु कहते हैं, शरीर भी तेरा नहीं है। शरीर भी परद्रव्य है। तो शरीरपरसे राग छोड़ दे। सबका राग छोड़कर, तू तो भिन्न आत्मा है। ऐसा गुरु दर्शाते हैं। वहाँ उसे किसी भी प्रकार का आग्रह या कोई पकड़ नहीं रहती, अन्दरसे छूट जाती है। गुरु की आज्ञा का आराधन। गुरु जो कहे वह सब उसे प्रमाण होता है। अंतर में रुचि में सब बैठ जाता है। बाहरसे छोड़ दे ऐसा उसका अर्थ नहीं है, अन्दरसे उसे ममता छूट जाती है।

मुमुक्षु :- माताजी! गुरु की निश्चय-आज्ञा तो तू तेरे आत्मा का आश्रय कर, लेकिन उसके साथ व्यवहार-आज्ञा भी इसके साथ ले लेनी चाहिये?

समाधान :- व्यवहार-आज्ञा भी ले लेनी चाहिये। गुरु एक शब्द कहे तो वह शब्द स्वयं बराबर ग्रहण कर लेता है। गुरु जो कहे वह सब स्वीकार कर ले।

मुमुक्षु :- उसमें भी एक निष्ठासे तन, मन और धनसे उनकी आज्ञा संमत होनी चाहिये?

समाधान :- तन, मन और धनसे सब प्रकारसे। गुरु तो विवेकी होते हैं, बिना साचे कुछ कहते नहीं। वे तो विवेकी होते हैं। तुझे उसमें विकल्प नहीं करना है। गुरु तो विवेकी ही होते हैं। वे बराबर समझकर बोलते हैं। तुझे तर्क करने की आवश्यकता नहीं है। जो शब्द वह कहे उसे तू प्रमाण करना। वे तो विवेकी होते हैं।

मुमुक्षु :- व्यवहार की कोई भी बात हो तो भी इस जीव को कहीं भी अपनी बुद्धि नहीं चलानी है।

समाधान :- अपनी बुद्धि नहीं चलानी। गुरु विवेकी हैं, सब कुछ समझकर कहते होंगे।

अपनी पात्रता, तेरी पात्रता ऐसी होगी इसलिये तुझे ऐसा कहते होंगे, ऐसा अर्थ करना कि मेरी पात्रता अनुसार कहते हैं।

मुमुक्षु :- माताजी! आशंका करके भी पूछता हूँ कि कहीं किसी जगह क्षयोपशमसे भूल हो और अपनी बुद्धि में लगे कि यह बराबर नहीं है, तो भी उनकी बात का स्वीकार करने में हित समया है?

समाधान :- उसका हित ही है। गुरु की भूल निकालनी वह तो बराबर नहीं है। अप्रयोजनभूत बात में या इसका ऐसा है, ऐसा करना वह योग्य नहीं है। प्रयोजनभूत बात तो, गुरु तो मोक्षमार्ग में चले हैं, उसमें प्रयोजनभूत में कोई फ़र्क़ नहीं है। क्षयोपशम में कहीं भूल-फेरफार हो तो वह खुद स्वीकार नहीं करता, आगे कुछ करने जैसा नहीं है। गुरु कहे वह प्रमाण है।

मुमुक्षु :- गुरु जो कहे वह उसे संमत है।

समाधान :- गुरु कहे वह प्रमाण है।

मुमुक्षु :- उसमें उसे नुकसान नहीं होनेवाला है।

समाधान :- उसमें उसे नुकसान नहीं होगा। पहेले में नुकसान होगा। गुरु की भूल है ऐसा देखता रहेगा तो उसकी भूल है। उसको खुद को नुकसान होता है। तू कहाँ और गुरु कहाँ है। तेरा तो एक क्षयोपशम मात्र है, गुरु तो मुक्ति के मार्गपर चले हैं। तेरे क्षयोपशम को मुख्य करके तेरा बड़प्पन करता है तो तुझे नुकसान होता है। क्षयोपशम ज्ञान को भी गौण कर देना है।

मुमुक्षु :- बाहरसे ऐसा लगे कि कोई बार उनका स्वीकार करना चाहिये, कोई बार उनसे भूल होती हो तो खुद को उन्हें बताना चाहिये कि ऐसा नहीं होना चाहिये। ऐसा जो विकल्प आता है, आपको कहता हूँ, लेकिन आप कहते हो कि जो गुरु कहते हैं उसे स्वीकार करने में ही उसका हित रहा है।

समाधान :- खुद का हित तो उसमें ही रहा है। गुरु कहे वह स्वीकार्य है। गुरु के आगे ऐसा कहना कि इसका ऐसा है, वह कुछ योग्य नहीं है। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे कहते हैं कि यह प्रमाण करना, स्वीकार करना। इसमें कहीं कुछ शब्द की भूल हो तो दोष ग्रहण मत करना। छल ग्रहण मत करना। आचार्य जैसे (ऐसा कहते हैं)। कहाँ पहुँचे हैं, वे कहते हैं कि कहीं छल ग्रहण मत करना। तुझे नुकसान होगा। कहाँ आचार्य पहुँचे हैं, कहाँ गुरु पहुँचे हैं, उन्हे भूल दिखानेवाला तू कौन समर्थ है? गुरुसे बड़े जो हों वह उन्हें कह सकते हैं, तू कहने के लायक नहीं है।

मुमुक्षु :- खुद का माप ही जूठा है।

समाधान :- जूठा है।

मुमुक्षु :- ऐसे वीतराग मार्ग में ऐसा परम विवेक तो खास आवश्यक है।

समाधान :- परम विवेक होना चाहिये।

मुमुक्षु :- दूसरा बहुत कुछ आता हो लेकिन इसप्रकार का यदि विवेक नहीं हो तो..

समाधान :- तो स्वच्छन्द है, नुकसान का कारण है।

मुमुक्षु :- आप तो बराबर फरमाते हो कि तुम ज्ञायक हो, अकर्ता हो। कल प्रवचन में आया कि कर्ता, कर्म, करण सब तुम ही हो। अनादिकालसे संसार में परिभ्रमण करता है उसका कारण यह वैभाविक गुण अथवा वैभाविक शक्ति जो जीव में है वह कारण है? और यदि वह कारण है तो आगम में वैभाविक शक्ति का अत्यंत विस्तारसे कथन क्यों नहीं है?

समाधान :- उसका कारण वैभाविक शक्ति है। उसकी खुद की ऐसे विभावरूप परिणमने की जीव की ऐसी योग्यता है। इसलिये विभावरूप कर्ता, कर्म, करण (होकर) विभावरूप परिणमता है। विभावगुण का वर्णन पंचाध्यायी में आता है, और कहीं नहीं आता है। वैभाविक शक्ति का। लेकिन उसकी योग्यता के बिना तो होता नहीं। उसकी वैभाविकरूप परिणमने की योग्यता है इसलिये होता है। नहीं तो जो जिसका स्वभाव है उस स्वभावमेंसे विभाव कैसे होता है? उसका कारण परद्रव्य तो कुछ कर नहीं सकता। एक द्रव्य यदि दूसरे द्रव्य को कुछ कर सकता है तो द्रव्य-चैतन्यद्रव्य पराधीन हो जाय। पराधीन हो जाय तो वह मार्ग दे तब होगा और स्वयं पुरुषार्थ कर सके ही नहीं। लेकिन जीव सब तरहसे स्वतन्त्र है। विभाव में स्वतन्त्र और स्वभाव में स्वतन्त्र। विभाव होता है उसमें कर्म निमित्तमात्र है। खुद की उस रूप परिणमने की योग्यता के बिना कोई जबरन परिणमन नहीं करवा सकता।

स्फटिक स्वभावसे निर्मल है। वह निर्मल है तो उसमें जो लाल, पीले प्रतिबिंब फूल के निमित्तसे झलकते हैं वह स्फटिक की योग्यता है। उसमें लाल, पीले फूल जबरन प्रतिबिंब नहीं करवाते। स्फटिक स्वयं निवड़ है तो भी उसमें ऐसे प्रतिबिंब झलकने की योग्यता है इसलिये होते हैं, कोई करता नहीं है।

ऐसे चैतन्य में ऐसी योग्यता है। उसे वैभाविक गुण कहो, ऐसी योग्यता कहो, जो भी कहो। वैभाविक शक्ति की व्याख्या पंचाध्यायी में आती है, और कहीं नहीं आती।

मुमुक्षु :- वैभाविक शक्ति इतना बड़ा काम करती है कि इस संसार में यह जीव इस शक्ति के कारण ही खुद के भूलकर भटकता है। उसका विवेचन दूसरे आगमों में स्पष्टीरूपसे अत्यंत विस्ताररूपसे नहीं है उसका क्या कारण है?

समाधान :- अनादि कालसे यह जीव परिभ्रमण कर रहा है, लेकिन आचार्यदेव कहते हैं कि... परिभ्रमण कर रहा है, आचार्यदेव को उसकी कोई महत्ता नहीं लगी है, उन्हें स्वभाव की महत्ता लगी है। स्वभाव की व्याख्या की है। उसमें विभाव क्यों होता है? उसकी योग्यता उसके साथ आ जाती है। आचार्यदेव को उसका विस्तार करनी की कोई महत्ता नहीं लगी है इसलिये विस्तार नहीं आता है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र है, यह बात की। उसमें यह आ जाता है। इसलिये उसका कोई प्रयोजन नहीं लगा है, ना

ही उसकी महत्ता लगी है। ऐसा उसका अर्थ है।

मुमुक्षु :– स्वभाव के सामने विभाव की महत्ता नहीं लगी, इसलिये वर्णन नहीं किया है।

समाधान :– इसलिये उसका वर्णन नहीं आता।

मुमुक्षु :– है तो अनादि का।

समाधान :– है तो अनादि का। लेकिन आचार्यदेव कहते हैं कि तु खुद को पहचान तो वह छूट जायेगा। तू स्वयं को पहचान। तेरा परिभ्रमण हो रहा है। तेरे कारण, तेरी भूलसे होता है इसलिये तू बदल दे। भूल होने का कारण क्या? आचार्यदेव उसका विस्तार नहीं करते हैं। तू ही कारण है। तेरी भूल के कारण तू भटका है।

मुमुक्षु :– उसके विरोध में ऐसा भी कहते हैं कि तेरे में ऐसी कोई शक्ति ही नहीं है कि जिस कारणसे तुझे विभावरूप परिणमन करना पड़े। तेरे में ऐसा गुण ही नहीं है कि तुझे विभावरूप परिणमना पड़े। लेकिन विभावरूप परिणमन तो अनादिसे संसार में चल ही रहा है।

समाधान :– चल तो रहा ही है। उसमें ऐसा कोई गुण नहीं है, लेकिन तेरी योग्यता के कारण ही तू परिणमता है। उसका अर्थ यह है कि योग्यता नहीं हो तो कर्म जबरन परिणमन नहीं करवाता है। यदि कर्म परिणमन करवाता हो तो किसीका मोक्ष ही नहीं होता। जीव पराधीन हो गया। कर्म करे तब होगा, कर्म मार्ग दे और कर्म मोक्ष दे, सब कर्मसे हुआ। फिर अपना कारण तो रहा नहीं। पूरा मोक्ष पराधीन हो गया। ऐसा तो होता नहीं। स्वयं पुरुषार्थ करे। दर्शन, ज्ञान,चारित्र की आराधना तू तेरे पुरुषार्थसे कर। तेरी भूल हो उसकी प्रायश्चित् कर, प्रत्याख्यान कर वह सब व्यवहार व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि कर्म ही सब करता है। फिर तुझे कहाँ पुरुषार्थ करना रहता है। इसलिये तू पुरुषार्थ कर, तू आराधन कर, तू उपदेश सुन, तू अन्दरसे बदल जा, ऐसा सब कहने में आता है उसका अर्थ यह होता है कि तेरी भूलसे तू भटका है। निमित्त कर देता हो तो खुद को कुछ करना ही नहीं रहता।

मुमुक्षु :– आपका कहने का तात्पर्य यह है कि त्रिकाली सामर्थ्य नहीं होनेपर भी पर्याय में योग्यता तो खुद की ही है।

समाधान :– खुद की ही योग्यता है। अपनी योग्यता के बिना होता नहीं, खुद पलटता है, स्वयं करता है। निमित्तमात्र है। निमित्त करता हो तो बिलकूल पराधीन हो गया। अपनी कोई योग्यता ही नहीं हो तो बिलकूल पराधीन (हो गया)। तो फिर आराधना करनी, सम्यग्दर्शन प्राप्त करना, खुद के आधीन कुछ रहता ही नहीं। सबकुछ कर्म करे तब होगा। तो उपदेश दिया जाता है कि तू आराधना कर, सम्यग्दर्शन प्राप्त कर, चारित्र प्रगट कर, सब कहने में आता है। पूरा उपदेश निष्फल है, यदि खुद नहीं कर सकता हो तो।